दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (गुजरात) का मुखपत्र

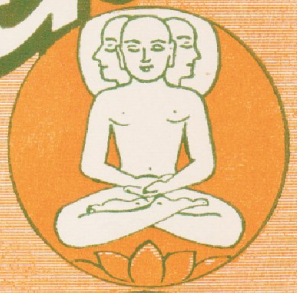

आत्मज्ञान ही ज्ञान है,
शेष सभी अज्ञान।
आत्मशान्ति का मूल है,
वीतराग विज्ञान॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३२ : अंक १ [३७३] जुलाई, १९७६

आत्मधर्म [३७३]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :

आजीवन	:	१०१ रुपये
वार्षिक	:	६ रुपये
एक प्रति	:	५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३२ [३७३] अंक : १

आतम रूप अनुपम अद्‌भुत,
याहि लखैं भव सिंधु तरो॥आतम०॥
अल्पकाल में भरत चक्रधर,
निज आतम को ध्याय खरो।
केवलज्ञान पाय भवि बोधे,
ततछिन पायौ लोक सिरो॥आतम०॥
या बिन समुझे द्रव्यलिंग मुनि,
उग्र तपन कर भार भरो।
नव ग्रीवक पर्यंत जाय चिर,
फेर भवार्णव मांहि परो॥आतम०॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन तप,
ये ही जगत में सार नरो।
पूरव शिव को गये जांहि अब,
फिर जैहैं यह नियत करो॥आतम०॥
कोटि ग्रंथ को सार यही है,
ये ही जिनवाणी उचरो।
'दौल' ध्याय अपने आतम को,
मुक्ति-रमा तव बेग वरो॥आतम०॥

यदि सुखी होना है तो.... ज्ञानस्वभाव का निर्णय कर

ज्ञानस्वभावी आत्मा के निर्णय करने की प्रेरणा देते हुए पूज्य स्वामीजी कहते हैं:—

जीव ज्ञानस्वभावी है, वह सुखी होना चाहता है। वर्तमान में उसे अल्पज्ञता और दुख है, उसे हटाकर वह सर्वज्ञता और सुख प्रकट करना चाहता है।

सर्वज्ञता अर्थात् एक समय में परिपूर्ण जाने ऐसा ज्ञान। वह सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति कहाँ है ? शरीर की क्रिया में, संयोग में या निमित्त में सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति नहीं है। राग में भी वह शक्ति नहीं है, और वर्तमान में जो अल्पज्ञ पर्याय है, उसमें से भी सर्वज्ञता प्रकट नहीं होती है।

आत्मा के ध्रुव ज्ञानस्वभाव में सर्वज्ञता प्रकट होने की शक्ति सदा भरी है। उस ज्ञानस्वभाव का विश्वास करके उसका अवलंबन लेने पर सर्वज्ञता एवं पूर्ण आनंद प्रकट होता है।

इसलिये जिसे आनंद का अनुभव करना हो, उसे अपने ज्ञानस्वभाव का निर्णय करना चाहिये।

सम्पादकीय

चैतन्य चमत्कार

एक इन्टरव्यू : कानजीस्वामी से

पूज्य कानजीस्वामी से उनकी जन्म जयंती के अवसर पर वैशाख शुक्ला द्वितीया, दिनांक १ मई १९७६ को बम्बई में सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय सैकड़ों व्यक्तियों के बीच संपादक आत्मधर्म द्वारा लिया गया इन्टरवयू जन-जन की जानकारी के लिए यहाँ प्रस्तुत है।

स्वामीजी के बारे में कुछ धारणाएँ आज समाज में प्रश्नों के रूप में उपस्थित हैं, जिनकी चर्चा सर्वत्र होती देखी जाती है। उन प्रश्नों के उत्तर, उन शंकाओं के समाधान, स्वयं स्वामीजी के मुख से हो, यही उद्देश्य रहा है इस इन्टरव्यू का।

'हमारे पास तो चैतन्य का चमत्कार है, जादू की लकड़ी का नहीं।' यह उत्तर पूज्य कानजीस्वामी ने उस दिया – जब उनसे पूछा गया कि हमने सुना है कि आपके पास कोई जादू की लकड़ी का चमत्कार है। आप जिस पर उसे फेर देते हो, वह आपका भक्त हो जाता है, निहाल हो जाता है, सम्पन्न हो जाता है।

स्वामीजी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा—हमारे पास कोई जादू की लकड़ी नहीं है। हाथ में पसीना आता है – उससे शास्त्र के पृष्ठ खराब न हो जावें, इसलिए लकड़ी रखते हैं। हाथ की लकड़ी दिखाते हुए बोले – यह लकड़ी कोई जादू की लकड़ी है ? यह लोगों का कोरा भ्रम है। इसी भ्रम के कारण एक बार तो कोई चुरा ले गया।

'तो आप इस भ्रम को दूर क्यों नहीं करते ?' यह पूछने पर सहज भाव से स्वामीजी कहने लगे – हमने तो कई बार चर्चा में और प्रवचनों के बीच भी कहा है। इससे अधिक हम

क्या कर सकते हैं ?

प्रश्न – यह बात ठीक है कि आपके पास न तो कोई जादू है और न उसका कोई प्रयोग ही आप करते हैं, पर जो व्यक्ति एक बार आपके पास आता है, आपके प्रवचनों को सुनता है, वह आपका हो जाता है; इसका क्या कारण है ?

उत्तर – हमारे पास आत्मा की बात है, दु:ख से छूटने की बात है, सच्चा सुख प्राप्त करने की बात है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दु:ख से बचना चाहते हैं। अत: जो भी शांतभाव से बिना पूर्वाग्रह के हमारी बात सुनता है, वह अवश्य प्रभावित होता है। हमारे पास तो वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की बात है, वही करते हैं। प्रभावित होनेवाले अपनी पात्रता से प्रभावित होते हैं।

प्रश्न – लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि वे लोग संपन्न भी हो जाते हैं।

उत्तर – हो जाते होंगे, पर हमारे आशीर्वाद से नहीं होते। वे हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं, तत्त्व की बात शांति से सुनते हैं। हो सकता है कि उन्हें पुण्य बँधता हो और संपन्न भी होते हों, पर उसमें हमारा किया कुछ नहीं। हम तो धन को धूल-मिट्टी कहते हैं। धन का मिल जाना कोई महत्त्व की बात तो है नहीं। महत्त्व की बात तो आत्मा का अनुभव है।

प्रश्न – आपको लोग गुरुदेव कहते हैं। क्या आप साधु हैं ? गुरु तो साधु को कहते हैं।

उत्तर – साधु तो नग्न दिगम्बर छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते भावलिंगी वीतरागी संत ही होते हैं। हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं। हम तो साधुओं के दासानुदास हैं। अहा! वीतरागी संत कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आदि मुनिवरों के स्मरण मात्र से हमारा रोमांच हो जाता है।

प्रश्न – तो फिर आपको लोग गुरुदेव क्यों कहते हैं ?

उत्तर – भाई! गोपालदासजी बरैया को भी तो गुरु कहते थे। देव, शास्त्र, गुरु वाले गुरु तो पंच परमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय, साधु ही हैं। हमसे लोग अध्यात्म सुनते हैं, सीखते हैं, सो गुरुदेव कहते हैं।

प्रश्न – तो आपको गुरुदेव विद्या-गुरु के अर्थ में कहा जाता है, देव-शास्त्र-गुरु के अर्थ में नहीं।

उत्तर – हाँ-हाँ यही बात है। भाई! हम तो कई बार कहते हैं कि वस्त्र-पात्रादि रखे और अपने को देव-शास्त्र-गुरु वाला गुरु माने मनवावे, वह तो अज्ञानी है। अधिक हम क्या कहें?

प्रश्न – अभी जब साधुओं की चर्चा आई तो आपने कुन्दकुन्द का, अमृतचन्द्र का नाम लिया, तो क्या आप अकेले कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र को ही सच्चा साधु मानते हैं, प्रमाणित मानते हैं, और आचार्यों को नहीं?

उत्तर – कैसी बातें करते हो? हम तो सभी वीतरागी संतों को मानते हैं। सिद्धांतचक्रवर्ती नेमीचंद्र, भूतबलि, पुष्पदंत, समंतभद्र, उमास्वामी, अकलंक, पद्मप्रभमलधारिदेव, जयसेनाचार्य आदि सभी मुनिराज आचार्य भगवंत पूज्य हैं, सम्माननीय हैं।

अरे भाई! आचार्यों को ही क्या, हम तो पंडित बनारसीदासजी, टोडरमलजी, जयचंदजी, दौलतरामजी आदि महान् पंडितों के शास्त्रों को पूर्ण प्रमाणित मानते हैं।

प्रश्न – मानते होंगे, पर आप पढ़ते तो समयसार ही हैं, अन्य ग्रन्थ नहीं।

उत्तर – कौन कहता है? हमने सभी शास्त्रों का अनेक बार स्वाध्याय किया है। दिगम्बर शास्त्रों का तो दोहन किया ही है, श्वेताम्बरों के भी लाखों श्लोक पढ़े हैं। समयसार में हमारी भक्ति अधिक है। उसका कारण तो यह है कि हमें वि.सं. १९७८ में समयसार हाथ लगा और हमने जब उसका अध्ययन किया तो हमारी आँखें खुल गईं, हमें लगा कि अशरीरी होने का तो यह शास्त्र है। समयसार ने हमारा जीवन बदल डाला, अतः उसके प्रति हमारी विशेष भक्ति होना स्वाभाविक है। समयसार १७ बार तो हमने सभा में पढ़ा है, वैसे तो सैकड़ों बार उसका दोहन किया है। भाई अपूर्व शास्त्र है, अपूर्व। उसकी महिमा हम कहाँ तक गायें, जितनी कहें थोड़ी है।

प्रश्न – यही तो हमारा कहना है कि आपने स्वाध्याय चाहे सैकड़ों शास्त्रों का किया हो, पर सभा में समयसार ही पढ़ते हैं, अन्य ग्रंथ नहीं।

उत्तर – कौन कहता है ? हमने सभा में प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़.....

बीच में ही टोकते हुए जब मैंने कहा कि – ये सब ग्रन्थ तो आचार्य कुन्दकुन्द के ही हैं।

तब रोकते हुए बोले – सुनो तो! सभा में धवल भी वांचा है, पहला भाग आद्योपान्त। इसके अतिरिक्त पुरुषार्थसिद्धियुपाय, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, मोक्षमार्गप्रकाशक, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समाधिशतक, तत्त्वार्थसार, बृहद्द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, भक्तामर स्तोत्र, विषापहार स्तोत्र आदि अनेक ग्रंथों पर प्रवचन किये हैं। अभी मई के आत्मधर्म में ३३ ग्रन्थों की तो लिस्ट दी गई है, देखना। और भी पढ़े हैं।

दिगम्बराचार्यों के सभी ग्रंथ महान हैं। समस्त शास्त्रों का तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है।

प्रश्न – आप पुण्य भाव को हेय कहते हैं – तो क्या पूजा–पाठ, दया–दान आदि पुण्य कार्य नहीं करना चाहिए ? आपके भगत तो पूजा–पाठ करते नहीं होंगे, दान देते नहीं होंगे ?

उत्तर – कौन कहता है ? जैसी पूजा सोनगढ़ में होती है, वैसी और जगह देखी भी नहीं होगी। कई विधान महोत्सव हो चुके, पंचकल्याणक–वेदी प्रतिष्ठाऐं अनेक हुईं हैं, जिनकी सूची मई के अंक में दी गई है।

दान! दान की बात क्या करते हो!! बिना कहे ही यहाँ वर्षा सी होती है, देखते नहीं। हम पूजा–पाठ, दया–दान थोड़े ही छुड़ाते हैं, उसे धर्म मानना छुड़ाते हैं। वह धर्म है भी नहीं।

प्रश्न – यदि धर्म नहीं तो फिर क्यों दें दान ? क्यों करे पूजा ?

उत्तर – धर्मी जीव को देव–पूजा एवं दानादि देने का भाव आता ही है, आये बिना नहीं रहता। जब–जब शुद्धोपयोग न हो तो शुभोपयोग तो रहेगा ही।

आचार्य पद्मनंदी ने तो पद्मनंदिपंचविंशतिका में यहाँ तक लिखा है कि – कौआ भी जब खुरचन को प्राप्त करता है, तब साथी कौओं को बुला–बुलाकर खाता है, अकेला नहीं खाता। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्राप्त धन का उपयोग सिर्फ अपने लिए करता है, साधर्मी

भाईयों और धर्म कार्यों में खर्च नहीं करता, वह तो कौए से भी गया बीता है।

जो धन प्राप्त हुआ है, वह तो पूर्व पुण्य का फल है। वर्तमान कमाने के अशुभभावरूप पुरुषार्थ का फल नहीं है। और वह पुण्य भी जब बँधा था, तब तेरी शांति जली थी, अत: यह धन तो शांति का घातक है, कोई अच्छी चीज़ नहीं है।

प्रश्न – आप तो आत्मा की ही बात करते हैं। अपने तीर्थ हैं; उनकी यात्रा, वंदना, सुरक्षा आदि भी तो गृहस्थों के कर्तव्य हैं ?

उत्तर– क्यों नहीं! हमने भी सारे भारत की तीन–तीन बार यात्राएँ की हैं। दो बार सारे भारत की, तीसरी बार अकेले दक्षिण भारत की। उनकी सुरक्षा भी आवश्यक है।

प्रश्न – आपकी बातें पूर्णत: सच्ची हैं और अच्छी भी हैं, फिर लोग मानते क्यों नहीं ?

उत्तर – कौन कहता है, नहीं मानते ? नहीं मानते तो ये हजारों लोग बम्बई जैसी मायानगरी में छब्बीस–छब्बीस दिन तक लगातार भरी दोपहर में क्यों भागे आते हैं, समय के पहिले। हमारी बात तो लाखों लोग सुनते हैं, समझते हैं, पढ़ते हैं, मानते भी हैं। यह तो तत्त्वप्रचार का काल पका है, तुम जैसे लोग पक गए हैं।

प्रश्न – मेरा आशय यह था कि सब लोग क्यों नहीं मानते ?

उत्तर – सब तो भगवान की भी नहीं मानते थे। यदि मान जाये तो संसार में ही क्यों रहते। भाई! सुननेवाले की भी तो पात्रता होती है। मानना, नहीं मानना, सुननेवाले की पात्रता पर निर्भर करता है

जो मानते हैं, वे अपने कारण और जो नहीं मानते, वे भी अपने कारण। दोनों में ही हमारा क्या है ?

प्रश्न – आपने कहा कि हजारों लोग सुनते हैं। आत्मा की इतनी सूक्ष्म बात बीस–बीस हजार जनता की समझ में क्या आती होगी ?

उत्तर – क्यों नहीं आती होगी ? सभी आत्मा हैं, भगवान हैं। जब आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हो सकता है तो..... । न सही पूरा, कुछ न कुछ तो आता ही होगा, तभी तो प्रतिदिन आते हैं। फिर हमारी भाषा तो सादी है, भाव अवश्य कठिन हैं, पर इसके

समझे बिना कल्याण भी तो नहीं। हमको क्या ? हमारे पास तो यही बात है। और लाऐं भी कहाँ से। संसार से छूटने की बात तो यही है, इसे जाने बिना कल्याण नहीं।

प्रश्न – समाज में सर्वत्र दो दल हो गये हैं। यदि थोड़ आप झुकें और थोड़े वे, तो समझौता हो सकता है।

उत्तर – भाई ! धर्म में समझ का काम है, समझौते का नहीं। धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हैं। वस्तु का स्वभाव तो जो है, सो है; उसे समझना है, उसमें समझौते की गुंजाइश कहाँ है। हम तो किसी से लड़ते ही नहीं, फिर समझौते की बात कहाँ है। आत्मा को सही समझना ही सच्चा धर्म है।

'यह प्रश्न जो आपसे किये हैं और उनके उत्तर जो आपने दिए हैं, उन्हें जन-जन की जानकारी हेतु आत्मधर्म में दिया जाएगा। मेरे यह कहने पर कहने लगे – हम इसमें कुछ नहीं जानते, तुम्हारी बात तुम जानो। हमसे तो तुमने जो पूछा, उसके बारे में हमें जो कुछ कहना था, कह दिया। हमारे पास तो अकेले में भी यही बात है और खुली सभा में भी यही बात है।

क्या रखा है इन सब बातों में ? आत्मा का अनुभव सबसे बड़ी चीज़ है। मनुष्य भव की सार्थकता आत्मानुभव में ही है। ●●

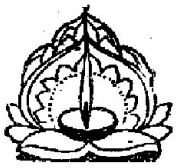

प्रायश्चित्त

आचार्य कुन्दकुन्द के 'नियमसार' नामक परमागम के 'शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्त अधिकार' पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव कानजीस्वामी प्रायश्चित्त का स्वरूप समझाते हैं:-

आत्मा त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप है, उसका चिंतवन अर्थात् एकाग्रता, वह निरंतर प्रायश्चित्त है। शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता, वह प्रायश्चित्त है और ऐसा प्रायश्चित्त संसार का नाश करता है। धर्मात्मा के ऐसा प्रायश्चित्त वर्तता है क्योंकि वे त्रिकाली अतीन्द्रिय आनंद स्वस्वभाव के प्रेमी हैं। धर्मात्मा निज सुखस्वभाव में रतिवान होने से उन्हें पर में कहीं सुख भासित नहीं होता, मिठास नहीं लगती।

अहा! आचार्य का एक-एक शब्द तो देखो, धर्मात्मा कैसे होते हैं? - जो निज सहज सुख में रतिवान हैं अर्थात् पर में कहीं सुखबुद्धि नहीं रही है। भले ही इन्द्र का इन्द्रासन हो या चक्रवर्ती की संपदा, परंतु निज सुख स्वभाव में रतिवान धर्मात्मा को जगत के ऐश्वर्य में मिठास नहीं लगती।

चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखे भोग।
काग-वीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग॥

एक साधारण पुण्य के फल की तुच्छ सामग्री में अज्ञानी को हर्ष और मिठास का वेदन होता है। यहाँ तो कहते हैं कि निज सुख में रतिवान धर्मात्मा को उत्कृष्ट पुण्य की सामग्री भी कौए की वीट समान भासित होती है।

यद्यपि समस्त उत्कृष्ट पुण्य की सामग्री एक साथ किसी के होती ही नहीं, परंतु एक साथ हो, तब भी ज्ञानी धर्मात्मा की दृष्टि में वह बिल्ली के सड़े हुए दुर्गंधयुक्त शरीर समान तुच्छ भासित होती है, उसमें उन्हें कहीं मिठास लगती ही नहीं, उन्हें तो एक आत्मा में ही प्रेम जागृत हुआ है।

जिसे शुभ की रुचि है, उसे विषय की ही रुचि है, क्योंकि शुभ के रुचिवान को उसके

फल में पुण्य की सामग्री आयेगी, तब वह उसी में लीन हो जाएगा। इसलिये वास्तव में तो शुभराग का प्रेमी, वह विषय का ही प्रेमी है, फिर भले ही वर्तमान में राज-पाट छोड़कर द्रव्यलिंग धारण किया हो। धर्मात्मा को तो पुण्य और उसकी सामग्री काले नाग जैसी लगती है, इसलिये उससे छूटने को वह अन्तर्मुख होने का प्रयत्न करता है। अस्थिरता के कारण धर्मात्मा को शुभ विकल्प आते हैं परंतु उसे उनकी रुचि नहीं होती। रुचिपूर्वक राग का सेवन, वह आत्मस्वरूप से विरुद्ध आचरण होने के कारण व्यभिचार है। अज्ञानी को राग का रुचिपूर्वक सेवन होता है, धर्मात्मा को तो स्वभाव की ही रुचि होती है।

यहाँ नियमसार (कलश १८०) में श्री पद्मप्रभ मुनिराज कहते हैं कि मुनियों को स्वात्मा का चिंतन, वह निरंतर प्रायश्चित्त है, क्योंकि प्राय: अर्थात् उत्कृष्ट और चित्त अर्थात् बोधज्ञान। आत्मा उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूपी वस्तु होने से वस्तुस्वभाव ही प्राश्यचित्त है। ऐसे त्रिकाल प्रायश्चित्तस्वरूपी भगवान आत्मा का आश्रय करने से पर्याय में प्रायश्चित्त प्रगट होता है।

वस्तु का स्वरूप ही ऐसा महान है कि जो भी शुद्ध पर्याय प्रकटती है, वह उस-उस त्रिकाल गुण स्वरूपी द्रव्य के आश्रय से ही उत्पन्न होती है।

वस्तु त्रिकाल प्रायश्चित्तस्वरूप ही है, इसलिये उसके आश्रय से निश्चय समता प्रकट होता है। वस्तु त्रिकाल क्षमास्वरूप ही है, इसलिये उसके आश्रय से पर्याय में निश्चय क्षमा प्रगट होती है। वस्तु त्रिकाल केवलदर्शन उपयोगस्वरूप ही है, इसलिये उसके आश्रय से पर्याय में आनंद प्रगट होता है। जो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह त्रिकाल सम्यग्दर्शनस्वरूपी वस्तु के ही आश्रय से प्रगट होता है। जो वीतरागता प्रगट होती है, वह त्रिकाल वीतराग स्वरूपी वस्तु के ही आश्रय से प्रगट होती है। अहा! वस्तुस्वभाव ही अचिंत्य महिमावान है।

यहाँ तो कहते हैं कि मुनियों को त्रिकाल प्रायश्चित्त स्वरूप वस्तु की एकाग्रता होने से निरंतर प्रायश्चित्त है। उस प्रायश्चित्त द्वारा पाप का परित्याग करके वे मुक्ति प्राप्त करते हैं। जिसप्रकार चिड़िया और कबूतर धूल में लोटकर फिर पंख फड़फड़ाकर धूल को झाड़ देते हैं, उसीप्रकार निज सुख में रतिवान धर्मात्मा निश्चय प्रायश्चित्त द्वारा पाप का परित्याग करके मुक्ति प्राप्त करते हैं। परंतु यदि किसी मुनि को आत्मचिंतवन के अतिरिक्त अन्य कोई चिंता हो तो वह विमूढ़ है अर्थात् जिसे त्रिकाल सुखस्वरूप वस्तु के प्रेम के बदले शुभराग का प्रेम वर्तता है, वह मिथ्यात्व के पाप को उत्पन्न करता है। ●●

आत्म-प्राप्ति का उपाय

हे जिज्ञासु जीव! आत्म-प्राप्ति की तेरी तीव्र जिज्ञासा देखकर 'आत्मा कैसे प्राप्त होता है' यह बात २७५वीं गाथा में समझायी होने पर भी पुनः हम तुम्हें यह बात परिशिष्ट द्वारा समझाते हैं।

इस प्रवचनसार शास्त्र की भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रचित २७५वीं गाथा की टीका पूर्ण करके टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यदेव, आत्मा कौन है, कैसा है, और किसप्रकार प्राप्त होता है? ऐसे जिज्ञासु द्वारा रुचिपूर्वक पूछे हुए प्रश्नों के उत्तर में पुनः परिशिष्ट द्वारा समझा रहे हैं।

अहो! शिष्य भी कैसा है? जिसे आत्मा की ही रुचि है, आत्मा को ही प्राप्त करने की जिसे अभिलाषा है, उसे आचार्यदेव पुनः समझाते हैं परंतु जिसे आत्मा की आवश्यकता नहीं है, ऐसे जीव के लिये आचार्यदेव का यह उपदेश नहीं है।

किसी का इकलौता पुत्र हो, संसार में उसका एकमात्र सहारा हो, और वह किसी मेले में खो जाये, तो उसे ढूंढ़ने का कितना प्रयत्न करता है। उसीप्रकार इस शिष्य को आत्मा के अस्तित्व की श्रद्धा तो हो गयी है। परंतु वह प्राप्त नहीं हो सका, इसलिये वह गहरी जिज्ञासापूर्वक श्री गुरु के निकट जाकर विनयपूर्वक पूछता है कि हे प्रभो! आपने आत्मा का जो स्वरूप समझाया है, उससे 'आत्मा है' ऐसा विश्वास तो मुझे आ गया है, परन्तु उसे प्राप्त कैसे किया जाए? आप कृपा करके मुझे समझाओ कि आत्मा कैसे प्राप्त हो सकता है?

शिष्य की तीव्र लालसा देखकर गुरु उससे कहते हैं कि हे वत्स! यहाँ २७५वीं गाथा द्वारा तुझे आत्म-प्राप्ति के मार्ग का ही उपदेश दिया है, तथापि तेरी जिज्ञासा शांत करने के लिये इस परिशिष्ट द्वारा पुनः विशेष स्पष्टीकरण करेंगे।

अहा! कैसे करुणासागर कल्याणकारी गुरु और कितना जिज्ञासु शिष्य!

आत्मा कैसा है? – चैतन्य सामान्य से व्याप्त अनंत धर्मात्मक एक द्रव्य है।

आत्मा किसप्रकार ज्ञात होता है? – तो कहा है कि अनंत धर्म को जाननेवाले जो अनंत नय, उनमें व्याप्त श्रुतज्ञान प्रमाण द्वारा स्वानुभव से आत्मद्रव्य ज्ञात होता है।

यह भगवान आत्मा अनंत धर्मों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है। धर्म अनंत हैं परंतु उन्हें

धारण करनेवाला द्रव्य एक है। ऐसे अनंत धर्मों को जाननेवाले अनंत नय हैं और उनमें श्रुतज्ञान प्रमाण व्याप्त हैं, इसलिये अनन्त नयात्मक श्रुतज्ञान प्रमाण से अनंत धर्मयुक्त संपूर्ण आत्मा ज्ञात हो जाता है। स्वोन्मुख होने से पूर्ण आत्मा स्वानुभव में आ जाता है।

आचार्यदेव ने पहिले तो आत्मा कैसा है ? कि अनंत धर्मात्मक एक द्रव्य है ऐसा संक्षेप में कहा। पश्चात् वह किसप्रकार ज्ञात होता है, उस विधि का संक्षिप्त वर्णन किया। तत्पश्चात् नय निरूपण द्वारा उन अनंत धर्मों में से ४७ धर्मों का वर्णन करके धर्मी आत्मद्रव्य कैसा है और वह कैसे प्राप्त होता है, यह बात विस्तार से समझायेंगे।

यहाँ अनंत धर्मात्मक अपना आत्मा, वह प्रमेय है और अनंत नयात्मक श्रुतज्ञान, वह प्रमाण है। ऐसे प्रमाण द्वारा स्वानुभव से अपना आत्मा प्रमेय होता है, ज्ञात होता है। पर-निमित्त से या राग के विकल्प से ऐसा आत्मा प्रमेय नहीं होता, परंतु साधक को स्वोन्मुख होने पर श्रुतज्ञान से ही ऐसा आत्मा प्रमेय होता है।

किसी भी नय से एक धर्म को मुख्य करके देखनेवाले की दृष्टि भी अकेले धर्म पर नहीं होती। धर्म को तो धर्मी ऐसी अखंड वस्तु का आधार है, इसलिये उसी पर दृष्टि रखकर प्रत्येक वस्तु का सच्चा ज्ञान होता है।

यहाँ परिशिष्ट में ज्ञान प्रधान कथन है। इसलिये आत्मा अनंत धर्मों में व्याप्त है, ऐसा कहा है। अनंत धर्मों को धारण करनेवाला अधिष्ठाता आत्मा है। इसलिये शुद्धभाव का आधार-स्वामी भी आत्मा है और विकारी भाव का भी स्वामी आत्मा है, अभेद का आधार भी आत्मा है और भेद का आधार भी आत्मा है, सामान्य का आधार भी आत्मा है और विशेष का आधार भी आतमा है, निर्विकल्प का अधिष्ठाता भी आत्मा है और विकल्प का अधिष्ठाता भी आत्मा है - ऐसा कहा गया है।

द्रव्यदृष्टि में तो मात्र त्रैकालिक सामान्य भूतार्थस्वभाव ही आश्रयरूप है। उसमें तो शुद्ध पर्याय भी भिन्न हो जाती है और वह व्यवहारनय के विषय में जाती है। त्रैकालिक द्रव्य स्वभाव का आश्रय किया, वह द्रव्य 'स्व' है। आश्रय तो एक 'स्व' का - सामान्य त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव का ही होता है। स्वभाव का आश्रय करनेवाली पर्याय भी द्रव्यदृष्टि के विषय में 'पर' है, 'भिन्न' है। ●●

दीक्षार्थी का कुटुंबीजनों को संबोधन

प्रवचनसार की गाथा २०२ पर प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी स्वयं आत्मविभोर होते हुए समझाते हैं कि जो उग्र रूप से द्रव्य स्वभाव को साधनेवाला, ऐसा विरक्त आत्मा अपने कुटुम्बीजनों को किसप्रकार संबोधन करता है।

ज्ञानज्योति के जगमगाते प्रकाश में जिसे गृहवास कारागृह के समान प्रतीत होता है, जिसकी वृत्ति सांसारिक कार्यों से अत्यंत उदास हो गई है, और जो चारित्रदशा अंगीकार करने के लिये घरबार छोड़ने को तत्पर हुआ है, ऐसा मोक्षार्थी जीव अपने कुटुंबीजनों की विदा लेते हुए, उन्हें वैराग्य की प्रेरणा देते हुए कहता है:-

हे स्नेही जनों! तुम जागो। यह मनुष्यभव अत्यंत दुर्लभ है। अज्ञान में रहकर सद्विवेक प्राप्त करना असंभव है। समस्त लोक मात्र दु:ख से सुलगता है और अपने भावकर्मों द्वारा इधर -उधर भटकता रहता है। ऐसे संसार से मुक्त होने के लिए हे जीवो! तुम सत्वर आत्मभान सहित जागो! जागो!

हे जीवो! यह स्नेही जनों का संयोग तो ऊँचे पर्वत के शिखर पर वायु के थपेड़े खाते हुए दीपक जैसा चंचल है। वे तो मात्र भोजनादि गृहकार्यों में ही साथ दे सकते हैं, परंतु मृत्युकाल में वे सब व्यर्थ हैं।

हे कुटुंबीजनों! मैं अपने अतीन्द्रिय आनंद में निवास करने जा रहा हूँ, इसलिए तुम मुझे स्नेह-बंधन में जकड़े बिना प्रेमपूर्वक विदा दो।

हे इस पुरुष के (आत्मा के) शरीर के बंधुवर्ग में वर्तते आत्माओं! मैं किंचित् भी तुम्हारा नहीं हूँ और तुम किंचित भी मेरे नहीं हो, मात्र भ्रांति से वैसी मान्यता थी। ज्ञान ज्योति द्वारा ऐसे भ्रम को छोड़ो और अनादि बंधु ऐसे निज आत्मा के साथ संबंध स्थापित करो। मुझे तो ऐसी ज्ञान ज्योति प्रकट हुई है, इसलिये अब मैं अपने आत्मबाँधव का विरह सहन नहीं कर सकूँगा। तुम मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दो।

हे इस पुरुष के शरीर के जनक तथा जननी के आत्माओ ! तथा इस पुरुष के शरीर के पुत्र के आत्मा ! निश्चय से ऐसा जानो कि मेरा और तुम्हारा जनक-जन्य ऐसा कोई संबंध है ही नहीं। हमारा जनक-जन्य संबंध मात्र निजात्मा में द्रव्य-पर्याय के बीच है। अब हम उसी के सहवास में जा रहे हैं, इसलिये विदा दो।

हे इस पुरुष के शरीर की रमणी के आत्मा ! इस शरीर की रमणी वह आत्मा की रमणी नहीं है। इस पुरुष के आत्मा ने तेरे आत्मा के साथ रमण नहीं किया है। आज यह आत्मा स्वानुभूतिरूपी जो रमणी उसके पास जा रहा है, अर्थात् त्रिकाल स्वानुभूतिरूप जो स्वभाव उसके पास आज पर्याय जा रही है। आज हम अपनी परमश्री रूपी कामिनी के विवाह-मंडप में जा रहे हैं, इसलिये विदा दो।

अहा ! मानो अपनी दृष्टि के समक्ष कोई जीव आत्म-प्रतीतिपूर्वक दीक्षा लेने जा रहा हो, ऐसा दृश्य आचार्यदेव ने इस गाथा की टीका में उपस्थित कर दिया है। कैसी अद्‌भुत शैली है कि श्रमण बनने के इच्छुक की वैराग्यदशा का वर्णन सुनकर मुमुक्षु जीव भी ऐसी भावना भाने लगता है कि ऐसा अपूर्व अवसर मुझे भी शीघ्र प्राप्त हो।

बड़ों या स्नेहीजनों की सम्मतिपूर्वक ही मुनिदशा अंगीकार करने का कोई नियम नहीं है। भरत चक्रवर्ती के सैकड़ों राजपुत्रों ने तो खेलते-खेलते भगवान के समवसरण में जाकर दीक्षा ले ली थी और वरांगकुमार ने दीक्षा लेने से पूर्व ममत्व रखनेवाले माता-पिता को वैराग्यपूर्ण संबोधन किया था कि:-

हे पिताजी ! हे माताजी ! जब भवन में आग लग जाती है, तब समझदार मनुष्य बाहर भागने का प्रयत्न करता है, परंतु कोई शत्रु हो तो वह उसे पकड़कर फिर आग में धकेलता है। उसीप्रकार मैं इस मोह ज्वाला से जलते हुए संसार की अग्नि से बाहर निकलना चाहता हूँ, तब आप शत्रु की भाँति मुझे पुन: उसी अग्नि ज्वाला में न फेंकें... मुझे घर में रहने को न कहें।

जिसप्रकार लहराते हुए भीषण समुद्र के बीच से कोई पुरुष तैरता-तैरता किनारे तक आ गया हो और कोई शत्रु उसे धक्के देकर फिर समुद्र में धकेले, उसीप्रकार हे माता-पिता ! दुर्गति के दु:खों से भरपूर इस घोर संसार-समुद्र में अनादि से डूबा हुआ मैं वैराग्य द्वारा अभी मुश्किल से किनारे पर आया हूँ। अब आप मुझे इस संसार-समुद्र में न धकेलें, घर में रहने को न कहें।

कोई मनुष्य शुद्ध, स्वादिष्ट, स्वच्छ, अमृत जैसे मिष्टान्न खा रहा हो और कोई शत्रु उसमें विष मिला दे; उसीप्रकार मैं अभी संसार से विरक्त होकर, अपने अंतर में धर्मरूपी परम अमृत का भोजन करने को तत्पर हूँ; तब आप उसमें राज्यलक्ष्मी के उपभोग का विष मिलाकर शत्रुकार्य न करें।

मेरे अंतर में इस समय शुद्धोपयोग की प्रेरणा जागृत हुई है और मेरा मन सर्वतः विरक्त हुआ है। इसलिये हे माता! अब मुझे आज्ञा दे, रोता हो तो एक बार रो ले, परंतु मेरा यह वचन है कि अब मैं पुनः माता नहीं करूँगा।

इसप्रकार कितने ही जीव मुनि होने से पूर्व वैराग्य के कारण, कुटुंब को समझाने की भावना से वैराग्यप्रेरक संबोधन करते हैं – और उन वैराग्यपूर्ण वचनों को सुनकर परिवार में कोई निकट मोक्षगामी जीव हो तो वह भी वैराग्य को प्राप्त होता है।

पश्चात् जिसप्रकार भयभीत कछुआ अपने सर्वांग को अपने में ही सिकोड़ लेता है, उसीप्रकार संसार से भयभीत ऐसा वह विरक्त जीव अपना उपयोग समस्त इंद्रियों से सिकोड़कर अपने में ही एकाग्र होने के लिए शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के साधक आचार्य के पास जाकर कहता है – 'प्रभो! शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि से मुझे अनुगृहीत करो।' और संसार से विरक्त मोक्षमार्ग में विचरने की उग्रभावनावंत उस जीव को श्रीगुरु दीक्षा देते हुए इसप्रकार कहते हैं कि 'यह तुझे शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि हो।'

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालायें खोलकर तत्त्व-प्रचार में अपना अमूल्य सहयोग दीजिए।

शुद्ध आत्मा को उपादेय करना ही सच्चा नमस्कार है

दिनांक २८-११-७५ को प्रातःकाल समयसार शास्त्र पर प्रवचन प्रारंभ करते हुए हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा :-

आज भगवान महावीर का दीक्षाकल्याणक दिवस है और १८वीं बार सभा में 'समयसार' प्रारंभ हो रहा है। परमब्रह्म भगवान आत्मा वाच्य है और शब्दब्रह्म वाचक है। समयसार शब्द वाचक है और पूर्णानंदमय निज शुद्धात्मा वाच्य है। यह समयसार शास्त्र महान मंगलस्वरूप है, भरतक्षेत्र का अद्वितीय चक्षु है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य महामुनि दिगम्बर संत थे। समस्त शास्त्रों के पारगामी, सातिशय निर्मल बुद्धि के धारक थे। उनके द्वारा समयसार टीका और कलश बनाये गये, जिन पर श्री शुभचन्द्राचार्य ने 'परम अध्यात्मतरंगिणी' में प्रथम पद में नमः समयसाराय के आठ अर्थ किये हैं। प्रथम सामान्य अर्थ में समयसार अर्थात् परमात्मा को नमस्कार करने के पश्चात् विशेषरूप से पंच परमेष्ठी और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इन निर्मल आठ पदार्थों को नमस्कार किया गया है।

जिसप्रकार राजा का संपूर्ण जीवन नाटक रूप में कहा जाये तो संक्षिप्त में सब बात आ जाती है, उसीप्रकार आत्मा का संपूर्ण स्वरूप दिखाने के लिये उसका वर्णन नाटक रूप में किया गया है। यह आत्मा परमात्मस्वरूप होते हुए भी अनादि से अपनी भूल से किसप्रकार दुःखी रहा, फिर भेदविज्ञानमय अध्यात्म विद्या के बल से किसप्रकार साधक और सिद्धदशा प्रकट करता है, यह सब वर्णन नाटक के रूप में किया गया है।

नव तत्त्व में मोक्षतत्त्व भी चिदानंद चैतन्य राजा का स्वांग है।

समयसार महाशास्त्र की 'आत्मख्याति' टीका के आरंभ में आचार्य अमृतचंद्र ने मंगलाचरण के रूप में निम्नलिखित काव्य लिखा है :-

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे॥

यह समयसार कलश का प्रथम कलश है, जिसमें अमृत भरा हुआ है। यहाँ आचार्यदेव

ने अस्ति से मंगलाचरण किया है, नास्ति की बात नहीं की। त्रिकाली निर्मल शुद्धवस्तु-द्रव्य, त्रिकाली निर्मल ज्ञानस्वभाव-गुण और शुद्धद्रव्यस्वभाव के आश्रय से प्रकट हुई स्वानुभूति की निर्मल दशा-पर्याय। इसप्रकार अस्ति से मंगलाचरण करते हुए जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष की अस्ति भी सिद्ध हो गयी, तब अजीव, आस्रव, बन्ध की नास्ति भी आ गयी।

सत् है.... है... है। इसप्रकार दृष्टि में अस्ति का जोर आने से नास्ति का ज्ञान आ गया। मात्र अस्ति का मंगलाचरण करने से सिद्ध होता है कि अस्ति की मुख्यता की आवश्यकता है, नास्ति की मुख्यता की नहीं।

'नमः समयसाराय' कहकर मंगलरूप नमस्कार किया। जीव नामक पदार्थ अर्थात् समय में जो सार अर्थात् भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मतत्त्व है, उस समयसार को नमस्कार किया है। साधक अपने शुद्ध आत्मा की दृष्टि से जानता है कि पूर्ण वीतरागी सिद्ध परमात्मा भी ऐसे ही शुद्ध त्रिकाली आत्मद्रव्य हैं। इसप्रकार नमः समयसाराय कहकर अपने शुद्धात्मा और सिद्ध भगवान को नमस्कार किया है। मेरा शुद्धात्मा भी इष्ट देव, इष्ट गुरु और परमेष्ठी है। शुद्ध सत्तास्वरूप, जिनराजस्वरूप, निज शुद्धात्म वस्तु के सम्मुख होकर उसे नमस्कार करता हूँ।

(१) शुद्धात्मा कैसा है ? :- 'भावाय' अर्थात् शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है, जिसमें अनंत गुण हैं। सर्वथा अभावस्वभावी नहीं। पर के अभावस्वभावी होते हुए भी अनंत गुण की सत्ता स्वरूप वस्तु है।

(२) चित्स्वभावाय :- जिसका स्वभाव चेतना गुणरूप है, ऐसा शुद्धात्मा है। चेतना गुणरूप वस्तु कहने से गुण-गुणी को सर्वथा भिन्न माननेवाले नैयायिक मत का निषेध हो गया।

(३) स्वानुभूत्या चकासते :- यह शुद्ध आत्मा अपनी ही अनुभवरूप क्रिया से प्रकाशित होता है अर्थात् स्वयं ही स्वयं को जानता है। ऐसा कहकर नमस्कार की विधि समझा दी। अपनी ही अनुभवरूप क्रिया द्वारा प्रकाशित होता है, नमस्कार करता है। अनुभूति अपनी पर्याय है, उसके द्वारा द्रव्य को प्रकाशित करता है।

अनुभूति पर्याय है, अतः व्यवहार है और द्रव्य निश्चय है। अनुभूति पर्यायरूप व्यवहार द्वारा द्रव्यरूप निश्चय साध्य है। निश्चय (द्रव्य) का आश्रय व्यवहार (पर्याय) करे, तब

अनुभूति प्रकट होती है। अनित्य, नित्य का आश्रय करे, तब अनित्य में नित्य ज्ञात होता है। इससे सिद्ध हुआ कि शुभराग या बाह्यक्रिया से आत्मा ज्ञात नहीं होता।

संवर अधिकार में ज्ञानक्रिया को आधार और द्रव्य को आधेय कहा है। वहाँ आश्रय की बात नहीं, अपितु किसमें ज्ञात होता है, इसकी मुख्यता से कथन है। ध्रुव वस्तु स्वयं को नहीं जानती, परंतु पर्याय में ज्ञात होती है। कार्य में कारण का ज्ञान होता है, ऐसा दिखाया है। उसीप्रकार यहाँ भी कहा कि स्वानुभूति से वस्तु प्रकाशित होती है अर्थात् अनुभूति पर्याय में ध्रुव वस्तु ज्ञात होती है। परंतु अनुभूति (पर्याय) की दृष्टि करने से ध्रुव वस्तु का प्रकाशित होना नहीं कहा। निर्मल पर्याय वस्तु का आश्रय करती है, तब उसमें वस्तु ज्ञात होती है। पर्याय जानती है, अतः पर्याय द्वारा द्रव्य का प्रकाशित होना कहा है।

'स्वानुभूत्या चकासते' इस विशेषण से आत्मा तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष माननेवाले नास्तिकमत का परिहार हुआ। वस्तुस्वरूप ही प्रत्यक्ष है। अतः पर्याय में प्रत्यक्ष होता है। प्रकाश नाम का एक गुण है, शक्ति है, आत्मा में। अतः प्रत्यक्ष स्व-संवेदन हो सकता है। प्रत्यक्ष स्वरूपी वस्तु पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञात होती है। सम्यग्दर्शन प्रतीतिरूप है, उस समय की मति-श्रुत पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञात हो, ऐसा वस्तु स्वभाव है। श्रद्धा-ज्ञान इत्यादि की पर्याय स्व-वस्तु की तरफ ढली अर्थात् स्वानुभूति की दशा में वस्तु प्रत्यक्ष हुई।

(४) सर्वभावान्तरच्छिदे :- आत्मा स्वयं से अन्य ऐसे सर्व भावों को एक समय में जानता है। अपने भाव को तो स्वानुभूति से जानता है, परंतु अपने से भिन्न अनंत जीव-अजीव, चर-अचर पदार्थों को क्षेत्र-काल संबंधी सर्व विशेषणों सहित अर्थात् उनके अनंत गुण-पर्यायों सहित एक ही समय में जानने की शक्ति-संपन्न है। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय समस्त लोकालोक को द्रव्य-गुण-पर्याय के विशेषों सहित एक साथ एक समय में जानने की शक्तिमय शुद्धात्मा है, वही परमदेव और परमगुरु है। इस विशेषण से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मत का परिहार होता है।

अपना आत्मधर्म, आप स्वयं पढ़िये एवं
अपने मित्रों को भी पढ़ने को दीजिये।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न – शास्त्राभ्यास आदि करने पर भी उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता, तो सम्यग्दर्शन के लिये क्या करना ?

उत्तर – यथार्थ में तो एक आत्मा को ही रुचिपूर्वक सबसे पहिले आत्मा को जानना, वही सम्यग्दर्शन का उपाय है। आत्मा का सत्य निर्णय करनेवाले को पहिले सात तत्त्वों का सविकल्प निर्णय होता है, शास्त्राभ्यास होता है, शास्त्राभ्यास ठीक है—ऐसा भी विकल्प में होता है, लेकिन उससे यथार्थ निर्णय नहीं होता। जहाँ तक विकल्प सहित है, वहाँ तक परसन्मुखता है, परसन्मुखता से सत्य निर्णय नहीं होता। स्वसन्मुख होते ही सत्य निर्विकल्प निर्णय होता है। सविकल्पता द्वारा निर्विकल्प होना कहा है, तो भी सविकल्पता निर्विकल्प होने का सही कारण नहीं है। तब भी वह पहिले होती है, इसी कारण सविकल्प द्वारा निर्विकल्प होना कहा जाता है।

प्रश्न – इतने अधिक शास्त्र हैं, उनमें सम्यग्दर्शन के लिये विशेष निमित्तभूत कौन सा शास्त्र है ?

उत्तर – स्वयं जब स्वभाव को देखने में उग्र पुरुषार्थ करता है, तब उस समय जो शास्त्र निमित्त हो, उसको निमित्त कहा जाता है। द्रव्यानुयोग हो, करणानुयोग हो, चरणानुयोग शास्त्र हो, वह भी निमित्त कहा जाता है, प्रथमानुयोग को भी बोधि समाधि का निमित्त कहा है।

प्रश्न – जो व्यवहार, निश्चय को बतलाता है, उसका कुछ उपकार तो है न ?

उत्तर – नहीं! व्यवहार निश्चय तक नहीं पहुँचाता, उससे कुछ कार्य सिद्धि नहीं होती। व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद करके समझना पड़ता है और भेद से आत्मा समझना पड़ता है। इतना व्यवहार होता ही है, तब भी वह अनुसरण करने योग्य नहीं। एक ज्ञायक को ही लक्ष्य में लेना योग्य है।

प्रश्न – परसत्तावलम्बी ज्ञान शुद्धात्मा का निर्णय करता है, क्या वह ज्ञान भी व्यर्थ है ?

उत्तर – परोन्मुख ज्ञान से सविकल्प निर्णय होता है, वह वास्तव में शुद्धात्मा का निर्णय नहीं कहा जाता। स्व–सन्मुख होकर निर्विकल्पता में जो निर्णय होता है, वही शुद्धात्मा का सच्चा निर्णय है।

प्रश्न – जो सविकल्प ज्ञान किनारे तक ले जाता है, उसको व्यर्थ क्यों कहा जाता है ?

उत्तर – सविकल्प ज्ञान से शुद्धात्मा का स्वानुभव नहीं होता। स्व–सन्मुख ज्ञान से शुद्धात्मा का स्वानुभवपूर्वक निर्णय होता है।

प्रश्न – जिसको सम्यग्दर्शन होना ही है, ऐसे जीव की पूर्व भूमिका कैसी होती है ?

उत्तर – इस जीव को जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा सविकल्प निर्णय होता है, लेकिन सविकल्प से निर्विकल्पता होती ही है, ऐसा नहीं है।

प्रश्न – इस पर से ऐसा होात है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का पात्र कौन है ?

उत्तर – यह पात्र ही है, लेकिन पात्र नहीं है, ऐसा मान लेता है। यही शल्य बाधक होती है।

प्रश्न – सम्यग्ज्ञान प्रकट करने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर – चैतन्य सामान्य द्रव्य पर दृष्टि करना चाहिये और उसके पहिले सात तत्त्वों का स्वरूप इसके ख्याल में आना चाहिये। विकल्प सहित सात तत्त्वों का निर्णय होना चाहिये।

प्रश्न – कितना अभ्यास करें कि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सके ?

उत्तर – ग्यारह अंगों का ज्ञान हो जाये, इतनी राग की मंदता अभव्य को होती है। ग्यारह अंग के ज्ञान का क्षयोपशम बगैर पढ़े ही हो जाता है, विभंग ज्ञान भी हो जाता है, और सात द्वीप समुद्र को प्रत्यक्ष देखता है, तो भी यह सब ज्ञान होना सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है।

प्रश्न – ग्यारह अंगवाले को भी सम्यग्दर्शन नहीं होता, तब आत्मा की रुचि बगैर इतना सारा ज्ञान कैसे हो जाता है ?

उत्तर – ज्ञान का क्षयोपशम होना यह तो मन्द कषाय का कार्य है, आत्मा की रुचि का कार्य नहीं। जिसको आत्मा की यथार्थ रुचि होती है, उसका ज्ञान अल्प हो तो भी रुचि के

बल पर सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन के लिये ज्ञान के क्षयोपशम की आवश्यकता नहीं, लेकिन आत्म रुचि की ही आवश्यकता है।

प्रश्न – अनुभूति में और ज्ञान में क्या अंतर है ?

उत्तर – ज्ञान में तो संपूर्ण आत्मा जाना जाता है और अनुभूति में तो पर्याय का ही वेदन होता है, द्रव्य का वेदन नहीं होता।

प्रश्न – सम्यग्दृष्टि स्वर्ग से आता है, तब माता के पेट में नौ महीने में निर्विकल्प उपयोग आता होगा या नहीं ?

उत्तर – यह बात ख्याल में है, लेकिन शास्त्राधार कोई मिलता नहीं।

प्रश्न – नौ महीने में अनुभव तो होता होगा न ?

उत्तर – नौ महीने में अनुभव आता है, ऐसा कोई आधार मस्तिष्क में नहीं आता। विचार तो अनेक आते हैं, लेकिन शास्त्राधार तो मिलना चाहिये न।

प्रश्न – राग को जीव करता है, कर्म करता है, और जीव तथा कर्म इकट्ठे मिलकर करते हैं, ऐसा कहने में आता है – तो इन तीनों में सही क्या समझना चाहिये ?

उत्तर – 'राग' यह जीव के अपराध से होता है, इसलिये जीव राग का कर्ता है। लेकिन जीव-स्वभाव में विकार होने का कोई गुण नहीं। इसलिये द्रव्य दृष्टि कराने के लिये राग का कर्ता, कर्म है, कर्म व्यापक होकर राग को करता है, ऐसा कहने में आता है और प्रमाण का ज्ञान कराना हो तो जीव और कर्म दोनों इकट्ठे मिलकर राग को करते हैं, ऐसा कहने में आता है। जैसे 'पुत्र' माता और पिता दोनों का कहा जाता है।

भगवान आत्मा ज्ञायक ज्योति है, वह विकार का कर्ता नहीं। विकार का कर्ता मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग – ये चार प्रकार के कर्म और उनके १३ प्रकार के प्रत्यय हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, वह विकार का कर्ता नहीं।

प्रश्न – ज्ञानी को जैसे शरीर भिन्न दिखता है, वैसे रागादि भिन्न दिखते हैं क्या ?

उत्तर – ज्ञानी को रागादि शरीर के जैसे ही भिन्न दिखते हैं। अत्यन्त भिन्न दिखते हैं।

प्रश्न – कर्ता-कर्म अधिकार में विकार को पुद्गल के साथ व्याप्य-व्यापक कहा है ?

उत्तर – स्वभाव दृष्टि से देखें तो विकार का कारण स्वभाव है ही नहीं। इससे विकार का निमित्त जो कर्म है, उसके साथ विकार को व्याप्य-व्यापक कहने में आता है।

प्रश्न – ज्ञानी, द्रव्य-गुण शुद्ध और पर्याय शुद्ध इतना ही आत्मा मानता है क्या ?

उत्तर – ज्ञानी श्रद्धा की अपेक्षा ऐसा मानता है तो ज्ञान की अपेक्षा से देखने पर राग का कर्तारूप परिणमित होनेवाला जीव स्वयं है, ऐसा ज्ञानी जानता है।

स्फटिकमणि में जो लाल-पीली आदि परछाई पड़ती है, वह उसकी योग्यता से होती है, तो भी स्फटिकमणि के मूल स्वभाव से देखें तो यह रंग उपाधिरूप है, मूल स्वभाव नहीं। उसीप्रकार जीव में पर्यायदृष्टि से देखें तो विकार उसके पर्याय की योग्यतारूप धर्म है, लेकिन द्रव्यार्थिकनय से देखें तो वह विकार उसका मूल स्वभाव नहीं।

प्रश्न – पांडे राजमलजी काललब्धि को जहाँ-तहाँ क्यों कहते हैं ?

उत्तर – पाँचों समवाय साथ ही हैं। राजमलजी को काललब्धि सिद्ध करना है। मैं तो पहिले से ही कहता हूँ कि जिस काल में जो होना है, वही होता है। इसका ज्ञान किसको होता है कि जो स्वभाव की दृष्टि करता है, उसको काललब्धि का सच्चा ज्ञान होता है।

प्रश्न – ध्यान पर्याय को द्रव्य से कथंचित् भिन्न क्यों कहा है ?

उत्तर – समयसार, गाथा ३२० में जयसेनाचार्य ने ध्यान को कथंचित् भिन्न कहा है। उसका अर्थ 'पर' की अपेक्षा से ध्यान पर्याय वह स्वयं की है, इसलिये अभिन्न है, और शाश्वत ध्रुव द्रव्य की अपेक्षा से ध्यान पर्याय विनाशीक होने से भिन्न है।

वास्तव में तो द्रव्य और पर्याय दोनों भिन्न हैं।

प्रश्न – द्रव्य में से पर्याय उत्पन्न होती है, पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है, तब द्रव्य ध्रुव टंकोत्कीर्ण तो नहीं रहा ?

उत्तर – पर्याय द्रव्य में से उत्पन्न होती है और पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है, यह पर्यायार्थिकनय से कहा है। द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य तो ध्रुव टंकोत्कीर्ण कूटस्थ है।

प्रश्न – द्रव्य से पर्याय भिन्न है तो पर्याय कहाँ से आती है ?

उत्तर – पर्याय आती तो द्रव्य में से है, कहीं अधर से नहीं आती, लेकिन जब पर्याय को सत् रूप

से स्वतंत्र सिद्ध करना हो तब पर्याय, पर्याय से ही है। द्रव्य से पर्याय हो तो द्रव्य एक रूप रहता है और पर्याय अनेक रूप होती है। उसे द्रव्य जैसी एक रूप ही होना चाहिये, लेकिन वैसी होती नहीं। द्रव्य सत् है, वैसे पर्याय भी सत् है, स्वतंत्र है – इस अपेक्षा से द्रव्य से पर्याय को भिन्न कहा जाता है।

प्रश्न – द्रव्य और पर्याय दो धर्म को पृथक् बताने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर – दो धर्म भिन्न हैं, उनकी प्रसिद्धि करने का प्रयोजन है। पर्याय एक समय की है और उसके पीछे ध्रुवदल तो त्रिकाल ज्यों का त्यों रहता है, इसको ज्ञेय बनाना चाहिये।

प्रश्न – देह देवल में भगवान आत्मा सर्वकाल प्रत्यक्ष है तो इस समय क्यों नहीं दिखता ?

उत्तर – यह शक्ति की अपेक्षा प्रत्यक्ष है। जिसकी दृष्टि इसके ऊपर जाती है, उसको प्रत्यक्ष है, तीनों काल में निर्मल है, तीनों काल में प्रत्यक्ष है। इसके स्वरूप में दया–दान आदि का राग नहीं होता। जो प्रत्यक्ष करना चाहता है, उसको प्रत्यक्ष ही है। जो वर्तमान ज्ञान का अंश है, उसको त्रिकाली की ओर मोड़ने से प्रत्यक्ष है।

प्रश्न – जीव को हर्ष–विषाद आदि के स्थान नहीं होते तो वह किसको होते हैं ?

उत्तर – जीव के मूल स्वभाव में विकार नहीं, इसलिये विकार के स्थानों को पुद्गल कर्म का कहने में आता है।

१०१) रुपये में आत्मधर्म के स्थायी ग्राहक बनकर अपनी आगामी पीढ़ियों के लिये भी आत्मधर्म सुरक्षित कर दीजिये।

चेत! चेत रे चेत!!

दिन-प्रतिदिन होनेवाली मृत्यु की क्षणभंगुर घटनाएँ सुनकर पूज्य स्वामीजी वैराग्य भरे शब्दों में कहते हैं कि - हे भाई! यह शरीर तो क्षण में छूट जाएगा। शरीर का संयोग तो वियोगजनित ही है। जिस समय आयु की स्थिति पूर्ण होना है, उस समय तेरे करोड़ों उपाय भी तुझे बचाने में समर्थ नहीं होंगे। तू लाखों रुपये खर्च कर या करोड़ों, चाहे तो विलायत से डॉक्टर बुलवा, परंतु यह सब छोड़कर तुझे जाना पड़ेगा। देह विलय की ऐसी नियत स्थिति को जानकर वह स्थिति आने से पूर्व ही तू चेत जा। अपनी आत्मा को चौरासी के चक्कर से बचा ले। आँख मिंचने से पहले जागृत हो जा। मरकर कहाँ जाएगा उसका तुझे पता है ? वहाँ कौन तेरा भाव पूछनेवाला होगा ? तो यहाँ लोग ऐसा कहेंगे और समाज यह कहेगा - ऐसे मोह के भ्रमजाल में उलझकर अपनी आत्मा को क्यों तड़पा रहा है ?

इष्टोपदेश में सुंदर दृष्टांत दिया है कि :-

मृग आदि अनेक प्राणियों से भरे हुए वन में आग लगने पर उससे बचने के लिये कोई मनुष्य वन के बीच स्थित वृक्ष पर चढ़ जाता है और अग्नि ज्वालाओं में भस्म होते हुए प्राणियों को देखता है। उस समय वह मानता है कि मैं तो वृक्ष पर सुरक्षित हूँ, यह अग्नि मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, परंतु उस अज्ञानी को खबर नहीं है कि वह अग्नि थोड़ी देर में वृक्ष को और उसे भी भस्म कर देगी। इसप्रकार मूढ़ जीव धनादि की आसक्ति के कारण दूसरों पर आनेवाली आपत्तियों को देखने पर भी अपने को सुरक्षित मानता है और कभी यह विचार भी नहीं करता कि ऐसी विपत्तियाँ आज नहीं तो कल, उस पर भी आ पड़ेंगी और कालाग्नि उसे भी जलाकर राख कर देगी।

अरे! अज्ञानदशा के कारण जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते हुए आत्मा को दुःखरूपी कोल्हू में पेल रहे हैं। पूर्व पुण्य के कारण उनको मनुष्य गति एवं साधन-सामग्री प्राप्त होते हैं, परंतु पैसा और प्रतिष्ठा आदि की तीव्र लालसा में पड़कर वे मनुष्य भव को व्यर्थ गंवा देते हैं। धन-संपत्ति के अहंकार में धर्म क्या वस्तु है, उसे सुनने और जानने की परवाह भी नहीं करते, ऐसे जीवों के दुर्भाग्य की महिमा कौन कर सकता है ? वे जीव विचार भी नहीं करते कि

हमें एक दिन मरना है और हम मरकर किस गति में जाऐंगे।

ममता की तीव्रतावाले उन जीवों को स्वर्ग में जायें, ऐसे शुभभाव का भी अवकाश नहीं होता; मरकर मनुष्य हों, ऐसे कोमल परिणाम भी नहीं होते। उन्हें यदि माँस, मछली, मदिरादि अभक्ष्य भक्षण के तीव्र अशुभपरिणाम न हों तो वे मरकर नरक में नहीं जाते, इसलिये माया-ममता के परिणामवाले ऐसे जीव मरकर तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं। तिर्यंच गति विशाल है। चौरासी लाख जन्म-स्थानों में से बासठ लाख जन्म स्थान तिर्यंच गति के हैं। यहाँ सेठ साहब-सेठ साहब कहलाते हैं और मरकर दूसरे ही क्षण ममतामय परिणामों के कारण गधी या कुतिया के पेट से जन्म धारण करते हैं... अरे रे! ऐसे अनंत भव व्यतीत करने पर भी यह जीव नहीं चेता.... अब पुनः वह अवसर आया है। तो हे भाई! पर की चिंता छोड़कर तेरा अपना कल्याण कैसे हो, उसका विचार कर... तू अपना सुधार... अपने हित के लिये तू अंतर्मुख होकर स्वभाव में देख और अपने पूर्ण स्वरूप को लक्ष्य में ले। भाई! यह शरीर तो क्षणभर में छूट जाएगा, बाह्य जगत में चाहे जो हो, परंतु तू अपने आत्मा को समझ। उसे समझने से ही तेरा कल्याण होगा और भव का अंत आयेगा।

भव-समुद्र में डूबते हुए जीवों से धर्मात्मा संत कहते हैं कि - हे जीव! तेरे अपने हित के लिये यह बात है, अपनी आत्मा को उबारने की यह बात है। मरते समय अपनी आत्मा ही तुम्हें शरणभूत होगी, इसलिये उसे जानने का प्रयत्न करो।

समाचार दर्शन

सोनगढ़ – पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रातः 'परमात्मप्रकाश' तथा मध्याह्न 'समयसार' शास्त्र पर पूज्य गुरुदेव के मर्मस्पर्शी प्रवचन चल रहे हैं।

शिक्षण वर्ग – जीवंत तीर्थ सोनगढ़ वर्षाकालीन जैन दर्शन शिक्षण-शिविर इस वर्ष ३१ जुलाई ७६ से १९ अगस्त ७६ तक होने जा रहा है। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव के प्रवचन हिन्दी भाषा में होते हैं तथा उत्तम, मध्यम एवं निम्न वर्ग इसप्रकार तीन कक्षाऐं लगती हैं। हिन्दी भाषी आत्मार्थी बंधुओं को यह बहुत अच्छा अवसर है। अतः अधिक लाभ लेना चाहिये। ठहरने और भोजनादि की समुचित व्यवस्था है।

दादर (बम्बई) में स्वामीजी की ८७वीं जन्म जयंती

वैशाख शुक्ला द्वितीय शनिवार, १ मई १९७६ को बम्बई के उपनगर दादर में पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी की ८७वीं जन्म जयंती बड़े ही हर्षोल्लास के वातावरण में मनाई गई। महावीर नगर [पारसी जीमखाना] में बने विशाल पंडाल में विद्युत रोशनी की जगमगाहट के बीच ८७ दरवाजों में से पधारते हुए गुरुदेव जब स्टेज पर पधारे तो पहले से ही उपस्थित जनसमूह के जयघोषों से पंडाल गूँज उठा। गुरुदेव के चरण स्पर्श के लिए आतुर लंबी-लंबी कतारें लोगों के हृदय में विद्यमान स्वामीजी के प्रति आस्था को व्यक्त कर रही थीं।

प्रवचन के पश्चात् दिगम्बर जैन समाज के सर्वमान्य नेता सेठ श्री साहू शांतिप्रसादजी, श्री नवनीतभाई जवेरी, पंडित लालचंदभाई, श्री खीमजीभाई, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, श्री नेमीचंदजी पाटनी, श्री धीरुभाई, श्री रमणीकभाई, श्री चिमनभाई ठाकरसी मोदी, श्री कपूरचन्दजी भायाणी एवं श्री डाह्याभाई जज आदि अनेक वक्ताओं ने जैन समाज की ओर से गुरुदेव के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

स्वामीजी की जन्म-जयंती के समाचार स्थानीय समाचार-पत्रों ने तो दिये ही, पर टेलीविजन पर भी तत्संबंधित अनेक दृश्य दिखाये गये। स्मरण रहे कि पूज्य स्वामीजी विगत २६ दिनों से बम्बई में विराजमान थे तथा वहाँ प्रातः एवं दोपहर दोनों समय के प्रवचनों में १०-१० हजार के करीब जनता प्रवचनों का लाभ ले रही थी।

श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का प्रथम अधिवेशन

महावीर नगर (पारसी जीमखाना) बम्बई में पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी की छत्रछाया में श्रीमान् विद्वद्वर्य रामजीभाई की अध्यक्षता में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट का प्रथम अधिवेशन सानंद संपन्न हुआ, जिसका उद्घाटन जैन समाज के सर्वमान्य नेता श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन ने किया तथा मुख्य अतिथि श्रीमान् सेठ लालचंदजी हीराचंदजी थे।

साहूजी ने उक्त ट्रस्ट की स्थापना और उद्देश्यों की भूरि-भूरि सराहना करते हुए साहू जैन ट्रस्ट की ओर से उक्त ट्रस्ट को गुरुदेव को ८७वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष्य में ८७ हजार रुपया प्रदान करने की घोषणा की। अन्य लोगों की ओर से भी लगभग १० लाख रुपये के आश्वासन प्राप्त हुए हैं। स्मरण रहे कि तीर्थों की सुरखा एवं जीवंत तीर्थ जिनवाणी की शोध, खोज, प्रचार व प्रसार के लिये उक्त ट्रस्ट एक करोड़ रुपये की विशाल धनराशि एकत्रित करने के लिए कृत संकल्प है। इस अवसर पर श्रीमान् सेठ लालचंदजी हीराचंदजी ने भी ट्रस्ट के समर्थन में महत्वपूर्ण भाषण दिया।

उक्त खुले अधिवेशन में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये, जिन्हें आदरणीय पंडित लालचंदजी मोदी, पंडित खीमचंदभाई, पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, ब्रह्मचारी माणकचंदजी चंवरे, श्री नेमीचंदजी पाटनी आदि ने प्रस्तुत किये; जिनका अनेक लोगों ने पूर्ण समर्थन किया तथा सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुए। **-महामंत्री**

धर्मचक्र भ्रमण

श्री महावीर धर्मचक्र गुजरात का तृतीय प्रवर्तन अशोकनगर (म.प्र.) से ४ मई, ७६ को श्री चन्द्रप्रभाषजी शेखर उपमंत्री (म.प्र.) के कर-कमलों द्वारा उद्घाटित होकर ललितपुर और झांसी जिले के ४० ग्रामों में घूमता हुआ २४ मई, १९७६ को शिविर के उद्घाटन के अवसर पर ललितपुर पहुँचा। धर्मचक्र प्रवर्तन से गाँव-गाँव में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। पूज्य कानजीस्वामी और उनके द्वारा प्रचारित तत्त्व के संबंध में अनेक भ्रांत धारणाऐं मिटीं और लोगों में उनके प्रति वात्सल्य भाव प्रकट हुआ। धर्मचक्र की ओर से - जहाँ भी गये वहाँ के जिन मंदिरों को आत्मधर्म का स्थायी ग्राहक बनाया गया और सोनगढ़ तथा उनकी सहयोगी

संस्थाओं की ओर से प्रकाशित साहित्य भेंट किया गया। धर्मचक्र का जगह-जगह भावभीना स्वागत किया गया।

आदरणीय पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, पंडित रतनचंद शास्त्री विदिशा, छोटे बाबूभाई फतेपुर, सेठ पूरणचंद गोदीका जयपुर, सेठ जवाहरलाल विदिशा आदि ४०-५० व्यक्ति निरंतर धर्मचक्र के साथ रहे। पंडित बाबूभाई और डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों से एवं तीर्थों की फिल्म-प्रदर्शन से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई। यह धर्मचक्र भ्रमण का ही प्रताप था कि ललितपुर शिविर इतना सफल रहा है। इसके लिए ललितपुर और उसी आसपास की समाज धन्यवाद की पात्र है। जहाँ-जहाँ गये, वहाँ की समाज ने पूज्य स्वामीजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि जहाँ एक ओर धर्मचक्र को बोलियों द्वारा सब स्थानों से कुल मिलाकर ४४,०००) रुपये प्राप्त हुए - वहीं दूसरी ओर धर्मचक्र की ओर से स्थान-स्थान पर मोक्षमार्गप्रकाशक आदि सत्साहित्य भेंट करने, जिनमंदिरों, तीर्थ-क्षेत्रों के जीर्णोद्धारार्थ एवं पाठशालाओं के संचालनार्थ ६४,०००) व्यय किये गये।

ललितपुर में वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित दसवाँ श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर उ.प्र. के प्रसिद्ध जैन नगर ललितपुर में पूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी के पुण्य प्रताप से सानंद संपन्न हुआ। यह शिविर अपने आप में अभूतपूर्व था। यह अब तक के हुए संपूर्ण शिविरों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सफल शिविर रहा है। इसमें बोर्ड द्वारा प्रशिक्षित शिक्षकों के माध्यम से एक हजार बालकों ने और प्रौढ़ शिक्षकों के द्वारा २००० प्रौढ़ों ने धार्मिक शिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षण कक्षा में प्रवेश के लिए ५०० अध्यापक बंधु पधारे थे। प्रवेश-परीक्षा के उपरांत ३२५ अध्यापकों को प्रवेश दिया गया और २० दिन के कठोर परिश्रम के बावजूद २६० अध्यापक उत्तीर्ण हुए। उत्तर-पुस्तिकाओं को देखने से ज्ञात होता है कि सभी ने बहुत मेहनत की है और बहुत कुछ सीखा है।

पंडित बाबूभाई मेहता और डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के लोकप्रिय प्रवचन तो प्रमुख

आकर्षण के केन्द्र थे ही, जिन्हें १०-१० हजार जनता प्रतिदिन बड़े चाव से सुनती थी। साथ ही डॉ. भारिल्ल एवं पंडित रतनचंदजी द्वारा ली गई प्रशिक्षण कक्षाएँ; नेमीचंदभाई रखियाल, उत्तमचंदजी सिवनी, ज्ञानचंदजी विदिशा, नेमीचंदजी पाटनी आगरा द्वारा ली गई कक्षाऐं भी कम आकर्षक नहीं थीं। संपूर्ण ललितपुर में आध्यात्मिक वातावरण बन गया था। प्रातः ४.३० बजे से रात्रि के १०.३० बजे तक ११-११ घंटे का कार्यक्रम चलता था, जिसमें पूजन, भक्ति, प्रवचन, शिक्षण-कक्षाऐं आदि विभिन्न कार्यक्रम विभिन्न स्थानों पर पृथक्-पृथक् चलते थे। श्री केशवरावजी नागपुर द्वारा तैयार कराये गये बालकों द्वारा बालबोध और वीतराग-विज्ञान पाठमालाओं के आधार पर समय-समय पर खेले गये छोटे-छोटे नाटक तथा विशेषकर 'महावीर का जीवनदर्शन' नाटक भी बहुत पसंद किये गये। विजयकुमारजी बरायठा, कोमलचंदजी तड़ा, ब्रह्मचारी अभिनन्दकुमारजी भोपाल, अभयकुमारजी जबलपुर, गोविन्ददासजी खड़ेरी, ज्ञानचंदजी स्वतंत्र वासोदा आदि का सहयोग भी शिक्षण में सराहनीय रहा।

श्री देवगढ़ क्षेत्र में सेठ श्री रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता तथा सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीका जयपुर द्वारा जैनमूर्ति संग्रहालय का शिलान्यास संपन्न हुआ और उससमय उपस्थित जनता द्वारा ३५,००० रुपये से अधिक की धनराशि प्राप्त हुई।

शिविर का उद्घाटन श्रीमान् सेठ भगवानदासजी शोभालालजी जैन सागर के द्वारा हुआ। दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता श्रीमान् सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता एवं प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन की अध्यक्षता श्रीमान् सेठ पूरणचंदजी गोदीका जयपुरवालों ने की। इनके अतिरिक्त श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी खुरई, श्री राजेन्द्रकुमारजी विदिशा, श्री डालचंदजी भोपाल, श्री जवाहरलालजी विदिशा, श्री सुमेरचंदजी अशोकनगर, श्री पदमचंदजी आगरा तथा श्री नन्नूमलजी जौहरी दिल्ली आदि महानुभावों ने शिविर से लाभ तो लिया ही, साथ ही साथ पूर्ण सहयोग भी किया। प्रशिक्षित अध्यापकों ने अपने-अपने गाँव जाकर शास्त्र सभा चालू करने और वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलने का संकल्प किया। शिविर के अवसर पर ११,००० रुपये का साहित्य बिका एवं आत्मधर्म के ४३ स्थायी एवं ४०० के लगभग अस्थाई ग्राहक बने।

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंग

ललितपुर शिविर के पावन अवसर पर ८ जून, १९७६ को भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति की मीटिंग हुई, जिसमें पूर्व प्रगति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई तथा आगामी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया गया। विशेष बात यह हुई कि ललितपुर और झांसी जिलों में चल रही वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं को व्यवस्थित करने एवं नवीन पाठशालाऐं खोलने, उनकी देखरेख करने आदि के लिए एक 'ललितपुर-झांसी जिला वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति' की स्थापना की गई, जिसके अध्यक्ष श्री हीरालालजी खजूरिया एवं मंत्री श्री अभयकुमारजी टडैया मनोनीत किये गये। उक्त समिति शीघ्र सक्रिय भी हो गई और शिविर समाप्त होने के पूर्व ही उसने विभिन्न स्थानों पर ५० वीतराग-विज्ञान पाठशालाऐं खोलने के आश्वासन प्राप्त किए।

फिरोजाबाद - दिनांक १५-६-७६ से २१-६-७६ तक सुहागनगरी फिरोजाबाद में शिक्षण-शिविर का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन श्रीमान् सेठ पूरणचंदजी गोदीका ने श्री सुमेरचंदजी अशोकनगर की अध्यक्षता में किया। जिसमें पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, नेमीचंदजी रखियाल, उत्तमचंदजी सिवनी, छोटे बाबूभाई फतेपुर, नेमीचंदजी पाटनी आगरा आदि अनेक गणमान्य विद्वान उपस्थित थे; जिनके प्रवचनों का लाभ जनता ने भरपूर लिया। सुबह से शाम तक १०-१० घंटे कार्यक्रम चलते थे। तीन हजार का साहित्य बिका और आत्मधर्म के सात स्थायी एवं ६२ अस्थायी ग्राहक बने।

अंत में अभिनंदन के समय सभी ने पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का बहुत-बहुत उपकार माना, जिनके द्वारा देश में एक आध्यात्मिक क्रांति हो रही है। अनेक लोगों ने सोनगढ़ शिविर में आने की तीव्र उत्कंठा व्यक्त की।

श्री केशवरावजी नागपुर द्वारा वहाँ के ही ६२ बालकों को तैयार करके जो नाटक दिखाया, उसका प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा तथा बालकों द्वारा किया गया निश्चय-व्यवहार का संवाद भी कम प्रभावक नहीं रहा।

अंतिम दिन प्रौढ़ों के लिये नियमित स्वाध्याय एवं बच्चों के लिये वीतराग-विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन पंडित बाबूभाई के हाथ से हुआ।

जयपुर - स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में अष्टाह्निका महोत्सव के पावन अवसर पर सिद्धचक्र विधान महोत्सव करने का निश्चय हुआ है। यद्यपि अष्टाह्निका ४ जुलाई से ११ जुलाई तक है। तथापि दिनांक ३ को भगवान महावीर का गर्भकल्याणक एवं दिनांक १२ को वीरशासन जयंती है। अतः महोत्सव दिनांक ३ से १२तक करने का निर्णय लिया गया है। इस समय डॉ. हुकमचंद भारिल्ल एवं पंडित मिलापचंद शास्त्री आदि विद्वानों के व्याख्यानों का लाभ मिलेगा।

छिंदवाड़ा - १७ मई से ३१ मई तक जैन शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवालों के प्रतिदिन प्रवचन होते थे। सभी कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए। **-शांतिकुमार पाटनी**

सनावद - पूज्य स्वामीजी की ८७ वीं जन्म-जयंती मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया।

श्रुतपंचमी पर्व पर बनारस से पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री पधारे थे। उनके प्रवचनों से काफी धर्म प्रभावना हुई। **- मुमुक्षु मंडल, सनावद**

इंदौर - १३ जून को आयोजित विशाल समारोह में आल इंडिया दिगम्बर भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी केन्द्रीय समिति की ओर से मध्यप्रदेश के लगभग २०० कार्यकर्ताओं को उपराष्ट्रपति श्री जत्ती के हाथों से स्वर्ण-पदक प्रदान किये गये। **- भगतराम जैन**

दिगम्बर जैन महासमिति के गठन का निर्णय

सामाजिक कार्य से प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी से मिलने आये हुए समाज के प्रतिष्ठित महानुभावों ने दिगम्बर जैन महासमिति के गठन का निर्णय लिया है।

- रमेशचंद जैन, मंत्री
आल इंडिया दि. भ. महावीर २५००वाँ निर्वाण महोत्सव सोसायटी

प्रबंध संपादक की कमल से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :-

(१) आत्मधर्म (हिन्दी) के सभी नये-पुराने ग्राहकों को नये नंबर दिये गये हैं। अत: पैपर पर छपा हुआ अपना नया नंबर नोट कर लें। स्थाई सदस्यों के नंबर L.M. (लाइफ मेम्बर) के साथ हैं एवं वार्षिक के सामान्य नंबर हैं। किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करते समय कृपया ग्राहक नं. अवश्य लिखें।

(२) अनेक भाईयों ने जून का अंक न मिलने के संदर्भ में पत्र लिखे हैं। उन सबको व्यक्तिगत उत्तर देना संभव नहीं है। गुरुदेव की जन्म-जयंती वाला अंक मई-जून का संयुक्तांक था, जिसकी सूचना आत्मधर्म में दे दी गई थी। पिछले वर्ष जो चंदा लिया गया था, वह मई १९७६ तक का ही था तथा आगामी वर्ष का चंदा जो लिया गया है, वह जुलाई १९७६ से जून १९७७ तक का है।

(३) अंक प्राप्त न होने की शिकायत माह की १२वीं तारीख के पश्चात् ही लिखने का कष्ट करें।

(४) समाचार सिर्फ वीतराग-विज्ञानमयी तत्त्वप्रचार से संबंधित ही छापे जाते हैं। अत: कृपया अन्य राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि समाचार प्रकाशनार्थ न भेजें।

मेरा जीवन

मैं आत्मा, शरीर के बिना, राग के बिना, जी सकता हूँ। जिसके बिना मैं जी सकता हूँ, उसका मोह क्या ? उसमें ममता कैसी ?

मैं ज्ञान द्वारा जीता हूँ, ज्ञान मेरा जीवन है। उसके बिना मैं क्षणभर भी नहीं जी सकता; इसलिये ज्ञान में ही मेरा ममत्व है, ज्ञान ही मैं हूँ।

हमारी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ –

- महावीर वाणी के गूढ़ रहस्य को प्रगट करनेवाले पूज्य कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का 'आत्मधर्म' पत्र द्वारा जन-जन में सम्प्रेषण।
- सोनगढ़ में संपन्न शिविरों द्वारा तैयार किये गये सदाचारी एवं तत्त्वप्रेमी आध्यात्मिक विद्वान।
- स्थान-स्थान पर संपन्न शिविरों द्वारा जैन तत्त्वज्ञान का प्रचार व प्रसार।
- प्रौढ़ों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में मुमुक्षु मंडलों द्वारा शास्त्र सभाओं का संचालन।
- बालकों में तत्त्व-प्रचार व सदाचार के लिए गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं का संचालन।
- सस्ता सत्साहित्य प्रकाशन एवं वितरण।
- तत्त्व-प्रचार व प्रसार को नियमित करने के लिए वीतराग-विज्ञान परीक्षा बोर्ड का संचालन।
- नवीन वैज्ञानिक धार्मिक पाठ्यक्रम।
- प्रशिक्षण-शिविरों द्वारा प्रशिक्षित धार्मिक अध्यापक।
- तीर्थों की सुरक्षा हेतु सर्व प्रकार का सहयोग।

- श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़
- पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर – ३०२००४
- श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, बम्बई

Reg. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

	रु० पैसे
समयसार	१२-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	४-५०
समयसार प्रवचन भाग २	४-५०
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-००
छहढाला (सचित्र)	१-५०
द्रव्यसंग्रह	१-२०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	०-४०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	३-००
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

	रु० पैसे
परमात्म पूजा संग्रह	२-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	५-००
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
सत्य की खोज (कथानक)	प्रेस में
अपने को पहचानिए	०-५०
पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक और उसकी ग्यारह प्रतिमाएँ	०-३५
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
सुंदर लेख बालबोध पाठमाला भाग १	०-२५

*** श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)**

*** पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**